भारतीय संस्कृति का मूल–तत्त्वः विश्व –बंधुत्व

*डॉ. अंजु

शोध–सार –

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम् श्रेष्ठ परम्परा की वाहक संस्कृति है। यहाँ की संस्कृति प्राणिमात्र के प्रति श्रेष्ठ मानवीय भावों और मूल्यों को स्थान देती आई है। भारतीय संस्कृति का मूल है – सम्पूर्ण विश्व को एक मानना और सबके प्रति समदृष्टि रखते हुए विश्व–बंधुत्व का उदात्त भाव रखना। वैदिक परम्परा से लेकर महात्मा गाँधी तक सभी ने इसी परम्परा का निर्वहन करते हुए प्राणिमात्र के मंगल हेतु पारस्परिक वैमनस्य को विस्मृत कर सहअस्तित्व के भाव का विस्तार दिया है।

संकेताक्षर – संस्कृति, विश्व–बंधुत्व, रामचरित मानस, वेद, गौतम बुद्ध, मानवतावाद, दया भाव, अहिंसा, संह–अस्तित्व आदि।

विस्तार – संस्कृति शब्द मूलतः संस्कृत का है। संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति 'सम्' उपसर्ग में 'कृ' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय लगकर हुई है। यह शब्द व्युत्पत्तिपरक अर्थ में परिष्कृत की हुई व्यवस्था या कार्यों का बोध कराता है। संस्कृति शब्द का भावार्थ संकुचित न होकर अत्यन्त व्यापक है। किसी जाति द्वारा विकास की सतत् प्रक्रिया में स्वयं का परिष्कार और परिमार्जन करते हुए कुछ विशिष्ट गुणों को महत्त्व देते हुए उनका पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तान्तरण और विशिष्ट संस्कारजन्य गुण ही संस्कृति के अन्तर्गत आते हैं। संस्कृति बाह्य न होकर जन के हृदय में निवास करती है। एस. आबिद हुसैन के शब्दों में, ''संस्कृति किसी एक समाज में पायी जाने वाली उच्चतम मूल्यों की वह चेतना है, जो सामाजिक प्रथाओं, व्यक्तियों की चित्तवृत्तियों, भावनाओं, मनोवृत्तियों, आचरण के साथ–साथ, उसके द्वारा भौतिक पदार्थों को विशिष्ट स्वरूप दिए जाने में अभिव्यक्त होती है।''[1] डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने निबंध 'राष्ट्र (संस्कृति) का स्वरूप में' संस्कृति को व्यापक संदर्भ में परिभाषित करते हुए लिखा है कि, ''ज्ञान और कर्म दोनों के पारस्परिक प्रकाश की संज्ञा संस्कृति है। भूमि पर बसने वाले जन ने ज्ञान के क्षेत्र में जो सोचा है, और कर्म के क्षेत्र में जो रचा है, दोनों के रूप में हमें राष्ट्रीय संस्कृति के दर्शन मिलते हैं। जीवन के विकास की युक्ति ही संस्कृति के रूप में प्रकट होती है।......परन्तु उन सबका मूल आधार पारस्परिक सहिष्णुता और समन्वय पर निर्भर रहा।''[2]

भारतीय संस्कृति विश्व मानचित्र पर अवस्थित राष्ट्र भारत से जुड़ी है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरित मानस' में लिखा है कि –

''विश्व भरण–पोषण कर जोई,

तापर नाम भरत अस होई।''

अर्थात् सम्पूर्ण विश्व के भरण–पोषण करने वाला शासक भरत और उसके नाम को आधार बनाकर ही इस देश का नामकरण हुआ भारत। भारत के नामकरण में ही सम्पूर्ण विश्व के प्रति कर्त्तव्यों के निर्वहन, सर्वप्राणियों के

कल्याण और उनके समुचित पालन–पोषण की भावना निहित रही है। सर्वप्राणियों के हित और कल्याण के भावों का बीजारोपण इस देश के नामकरण के साथ ही हुआ है, जो आगे चलकर विश्वकल्याण और विश्व–बंधुत्व का आधार बना। भारतीय संस्कृति में 'न ही मनुष्यात् श्रेष्ठ कर्म किंचित्' की उदार दृष्टि ही प्रेरणास्त्रोत रही है जो यह मानती है कि इस सृष्टि में मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। भारतीय संस्कृति में 'स्व' के स्थान पर 'पर' और 'समाज' को अधिक महत्त्व दिया गया है। ''भारतीय संस्कृति में व्यष्टि के स्थान पर समष्टि को महत्त्व दिया गया। इस संस्कृति का दृष्टिकोण विशुद्ध मानवतावादी है। घर, समाज, प्रदेश, देश सारी ही सीमा प्राचीरों को लाँघ कर मनुष्यमात्र किंवां जीवमात्र की सहायता करना, रक्षा करना तथा कल्याण की भावना रखना भारतीय संस्कृति की निजी विशेषता है।''[2]

अति प्राचीनकाल से भारतीय संस्कृति के मूलाधार वेद रहे हैं। आज जब सम्पूर्ण विश्व में 'सर्वजनहिताय' और कल्याणार्थ प्रजातांत्रिक शासन–व्यवस्था को अंगीकार किया जा रहा है। उसकी नींव हमें अपने वैदिक साहित्य में देखने को मिलती है। वेदों में प्रजातंत्रीय शासन–व्यवस्था को सर्वोत्तम बताया गया है– 'महते जानराज्याय.।'[3] इस जनतांत्रिक व्यवस्था में सबको उदारमना होते हुए समभाव और मैत्रीपूर्ण दृष्टि से देखने पर बल दिया गया है–

मित्रस्य मा चाक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।[4]

यजुर्वेद के इस मंत्र में विश्व–प्रेम की बात कही गई है कि सब मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। मैं सबको मित्र की दृष्टि से देखूँ और सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें। यही मैत्री भाव इस विश्व में आपसी संघर्ष और द्वेषपूर्ण वातावरण में शान्ति स्थापित करने का बीजमंत्र बन सकता है।

''यत्र विश्वं भवत्येकनीडम।

स ओतः प्रोतश्च विभू प्रजासु।[5]

यह सम्पूर्ण विश्व एक घर (नीड़) की तरह होना चाहिए। इसमें सम्पूर्ण विश्व के परस्पर प्रेम, सद्भाव की कामना करते हुए एक घर (नीड़) के सदृश्य बनने की इच्छा अभिव्यक्त की गई है।

हमारे पूर्वजों ने इस सृष्टि के प्राणिमात्र के प्रति चाहे वह मनुष्य हो या पशु–पक्षी, सभी के कल्याण की कामना करते हुए उनके सुखी और निरोग रहने की प्रार्थना की है जो भारतीय संस्कृति का सम्पूर्ण विश्व के समक्ष उदात्त चिन्तन का उद्घोष है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुख भाग भवेत्।।

विश्व–कल्याण की मंगलकामनाओं को केन्द्र में रखकर ही भारतीय संस्कृति पुष्पित और पल्लवित हुई है।

भारतवासियों का अति प्राचीनकाल से सम्पूर्ण जगत् और प्राणियों के प्रति उदार एवम् व्यापक दृष्टिकोण रहा है। भारतीय संस्कृति का महान् आदर्श रहा है–

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

संकीर्ण मानसिकता और तुच्छ स्वार्थों के बंधनों से ऊपर उठकर आपसी सौहार्द और बंधुत्व का प्रतिपादन

करते हुए हमने सम्पूर्ण पृथ्वी को अपना परिवार और इसके निवासियों को हितैषी परिजन माना है। डॉ. प्रीतिप्रभा गोयल ने इस पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि, ''विश्वकल्याण व विश्वबंधुत्व की भावना से ओतप्रोत होकर ही हमारी इस भारतीय संस्कृति ने 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का बीजमंत्र दिया। यही वह कमनीय भावना है, जिससे भावित होने पर ही विश्वशान्ति सम्भव है। भारतीय संस्कृति ने सदैव संकुचित विचारधारा और स्वार्थों से ऊपर, उठकर विश्वकल्याण और सम्पूर्ण मानवता की सेवा पर बल दिया।''[6]

यजुर्वेद का अधोलिखित मंत्र समाज में समानता स्थापित करने की दृष्टि से द्रष्टव्य है—

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्चति;

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति।।[7]

यजुर्वेद का यह मंत्र समाज में साम्यवाद, सामाजिक एकता और सामरस्य स्थापनार्थ मानवीय सम्बन्धों की भूमिका का श्रेष्ठ उदाहरण है। इस मंत्रानुसार जो मनुष्य सभी प्राणियों में अपने जैसा व्यवहार करता है, स्वयं की आत्मा के समान ही दूसरों के आत्म—तत्त्व को महत्त्व देता है। सभी प्राणियों में उसी ईश्वर का अंश है यह मानकर समस्त जगत् के साथ व्यवहार करता है। इस भाव को मानव द्वारा जीवन में व्यवहृत करने से भेदभाव के संकीर्ण बंधनों को तोड़कर मानव—मानव के मध्य प्रेम के दर्शन होते हैं। यही भारतीय संस्कृति में मानवता का उच्चतम आदर्श है। जिसने मात्र मनुष्य ही नहीं बल्कि समस्त प्राणिजगत् के प्रति उदात्त भाव अपनाने पर बल दिया है। ''वैदिक कालीन मानव में अपने चारों ओर के परिवेश को अपने अनुकूल बनाने के लिए तथा स्वयं को उसके अनुकूल बनाने के लिए जिन आदर्शों, जिन आस्थाओं तथा जिस जीवन—पद्धति को अंड्गीकार किया, उसके कारण ही वैदिक संस्कृति एक गतिमान सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक संस्कृति बन गई। समस्त जैव तथा अजैव जगत् के प्रति जिस क्रिया—प्रतिक्रिया की कल्पना वैदिक मानव ने की, उसे शाश्वत मूल्यों के रूप में प्रतिष्ठित किया तथा एक ऐसे सांस्कृतिक पर्यावरण का आदर्श विश्व के समक्ष रखा, जो एकपक्षीय तथा एकाड्ंगी न होकर सर्वाड्ंगीण है।''[8]

भारतीय संस्कृति का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। वह किसी सीमा में बंधी नहीं है। इसी व्यापकता के कारण विश्व की अन्यान्य देशों व जातियों से जुड़े लोगों व विचारों को इसने अपने में समाहित कर लिया। डॉ. श्रीकृष्ण ओझा के अनुसार, ''भारत की सामाजिक या मिली—जुली संस्कृति में मानो सभी कुछ समा जाता है, क्योंकि इसके निर्माण में निषाद, द्रविड़, आर्य, शक, कुषाण, हूण, पठान, तुर्क, मंगोल, यूरोपीय जातियों आदि का योग रहा है। यह सच है कि भारत ने अपनी संस्कृति में देश—देश और जाति—जाति के विचार ग्रहण कर उनकी भावनाओं को अपनाया है, किन्तु इस संस्कृति का एक ''अपनापन''सदैव रहा है। .... इसी कारण इसके तुल्य विश्व की अन्य प्राचीन संस्कृतियों के विनष्ट हो जाने पर भी यह संस्कृति अतीत काल से लेकर अब तक प्रेरणा प्रदान करती आई है।''[9] विश्व के अनेक विचारों, धर्मों और वादों के मध्य एकता सुनिश्चित करने का सफल प्रयास सदियों से भारतीय संस्कृति की विशेषता रहा है। अनेक विचारधाराओं, जातियों और संस्कृतियों के सामंजस्य ने भारतीय संस्कृति को विश्व—बंधुत्व का अद्भुत वरदान प्रदान किया है।

गौतम बुद्ध ने अहिंसा का महत्त्वूर्ण सिद्धांत दिया। इस सिद्धान्त को विश्व के अनेक देशों ने अपनाया। कलिंग विजयापरान्त सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म अपनाया। सम्राट अशोक एक दुर्धर्ष योद्धा एवं कुशल प्रशासक होने पर भी विश्व—बंधुत्व एवं लोक—कल्याण का संदेश दूर देशों में पहुँचाया। सम्राट अशोक भारतीय इतिहास में पहला शासक था जिसने राजपद पर रहते हुए राजनीतिक जीवन में हिंसा के त्याग व अहिंसा को अपनाने का संदेश दिया। श्रीलंका (सिंहलद्वीप) में बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ अपने पुत्र महेन्द्र व पुत्री संघमित्रा को भेजा। अपने पड़ोसी

राज्यों के साथ शान्ति एवम् सह–अस्तित्व के सिद्धान्तों के आधार पर सम्बन्ध स्थापित किए।

भारत के बौद्ध धर्म प्रचारकों ने मध्य एशिया, चीन, मंगोलिया, मंचूरिया, जापान, कोरिया, जावा, सुमात्रा, श्याम, मलाया, बर्मा, लंका आदि देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। जिससे इन देशों में भी भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ। ''बृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति का प्रचार तलवार के सहारे नहीं हुआ, कलम के सहारे हुआ।''[10] भारतीयों ने आर्थिक समृद्धि हेतु यह सांस्कृतिक सम्बन्ध नहीं कायम किए थे। वहाँ भारतीय संस्कृति के वैश्विक दृष्टिकोण का प्रचार–प्रसार हुआ।

भारत की विश्व–बंधुत्व की भावना सहिष्णुता पर आधारित है। भारतीयों का जीवन–दर्शन 'जीओ और जीने दो' की शुभाकांक्षा पर आधारित है। भारतीयों ने अपना धर्म, आचार–विचार तथा संस्कारादि किसी पर भी नहीं थोपे हैं। विश्व के कई देशों में हिन्दू और बौद्ध धर्म का प्रचार और वर्तमान में भी उनकी उपस्थिति इसका प्रमाण है।

भारतीय संस्कृति का आधार मानवतावाद है। यह सिद्धांत सम्पूर्ण मानव–जाति के कल्याण से जुड़ा है और देशकाल के बंधनों से परे रहा है। इसीलिए यह संस्कृति विश्वव्यापी रही है। भारतीय मनीषियों ने दूसरों को पीड़ा पहुँचाना पाप व परोपकार को पुण्य का प्रतीक मानकर भाईचारे की मिसाल पेश की है–

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनं द्वयम्।

परोपकार पुण्याय पापाय परपीड़नम्।।

आश्रम–व्यवस्था में वानप्रस्थ आश्रम के समस्त जगत् का कल्याण व पंच महायज्ञ में नृयज्ञ (अतिथि) व भूतयज्ञ (समस्त प्राणियों का कल्याण) भारतीय संस्कृति की उदात्तता व सौहार्द्रता का परिचायक है। पुरुषार्थ चतुष्ट्य में धर्म के अन्तर्गत समस्त प्राणि जगत के साथ सद्व्यवहार व धर्मपूर्वक आचरण भारतीय संस्कृति के बंधुत्व भाव का उत्कृष्ट उदाहरण है। जो समाज में ऐक्य और समरसता स्थापित करने की महत्त्वपूर्ण कड़ी रहे हैं। आज भी जिनकी प्रासंगिकता यथावत बनी हुई है, बल्कि अधिक प्रासंगिक हो गए हैं।

प्राचीन शिक्षा के केन्द्र नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला, वल्लभी अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा के प्रमुख केन्द्र रहे हैं। यहाँ पर विदेशी छात्र भी बिना किसी भेदभाव के शिक्षार्जन करते थे। कक्षा में धनी या निर्धन के मध्य किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होता था। विद्यार्थी 'सादा जीवन उच्च विचार' के अमूल्य पाठ को सीखते थे। अनेक विद्वान इन शिक्षा केन्द्रों ने दिए हैं। यह विश्वविद्यालय कई सदियों तक विद्यार्थियों को शिक्षित करने के साथ भारतीय संस्कृति के पोषक, वाहक और प्रचारक भी रहे।

तभी तो 19वीं सदी के महान् विचारक मैक्समूलर ने भारतीय संस्कृति की देन को रेखांकित करते हुए लिखा है कि ''अगर मैं आपसे यह पूछूँ कि केवल यूनानी, रोमन और यहूदी भावनाओं एवं विचारों पर पलने वाले हम यूरोपीय लोगों के आन्तरिक जीवन को अधिक समृद्ध, अधिक पूर्ण और अधिक विश्वजनीन, संक्षेप में अधिक मानवीय बनाने का नुस्खा हमें किस जाति के साहित्य में मिलेगा, तो बिना किसी हिचकिचाहट के मेरी उँगली हिन्दुस्तान की ओर उठ जायेगी।''

आधुनिक काल में भारत के विभिन्न समाज–सुधारकों, धर्म–सुधारकों, स्वतंत्रता सेनानियों ने भी भारतीय संस्कृति के धूमिल होते मानवीय मूल्यों को संरक्षित करके सम्पूर्ण विश्व में इनके पुनर्स्थापन के सद्प्रयास किए। ''भारत में विश्व–धर्म, विश्व–बंधुत्व और विश्ववाद की भावना का आरम्भ राममोहन राय की अनुभूतियों में हुआ था एवं उन्होंने हिन्दू–धर्म की जो व्याख्या प्रस्तुत की थी व विश्व–धर्म की भूमिका से तनिक भी कम नहीं थी।

मुक्त–चिंतन, वैयक्तिक स्वातंत्र्य और प्रत्येक प्रकार का विश्वास रख कर भी धर्म–च्युत नहीं होने की योग्यता, हिन्दू–धर्म के ये पुराने लक्षण रहे हैं।''[11]

बौद्ध और जैन धर्म प्राणीमात्र के प्रति दयाभाव रखते हैं और अहिंसा को परम धर्म मानते हैं। इस संसार को 'अहिंसा परमो धर्म' के मार्ग को अपनाने का संदेश दिया है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने गाँधीजी के अहिंसा के क्षेत्र में योगदान पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि, ''अहिंसा परम धर्म के रूप में युगों से पूजित चली आ रही थी। किन्तु, गाँधीजी से पूर्व किसी ने भी, समष्टि के धरातल पर अथवा कोटि जन–व्यापी महाआन्दोलनों के भीतर से अहिंसा का प्रयोग नहीं किया था। गाँधीजी ने यह प्रयोग किया और उनके प्रयोग से संसार के असंख्य लोगों में यह आस्था उत्पन्न हुई कि अहिंसा की साधना सामूहिक कार्यों में भी चल सकती है।''[12] गाँधीजी के अहिंसावादी सिद्धान्त को विश्व के कई देशों के लोगों ने अपनाया। दक्षिण अफ्रीका में नेल्सन मण्डेला ने अंग्रेजों की रंगभेद नीति का विरोध कर सफलता प्राप्त की। नस्लभेदी नीति से दक्षिण अफ्रीका को मुक्त करवाने में सफलता प्राप्ति के पीछे गाँधीजी के अहिंसा सिद्धांत का ही अनुसरण था। ''अहिंसा, यह शब्द ही गाँधी–धर्म का निचोड़ है तथा हिंसा से पूरित विश्व में यह एक शब्द गाँधीजी का जितना व्यापक प्रतिनिधित्व करता है, उतना उनके और सारे उपदेश मिलकर भी नहीं कर पाते।''[13]

गाँधी जी का राष्ट्रवाद प्रेम, अहिंसा और विश्व–बंधुत्व से परिपूर्ण था। गाँधीजी ने आपसी मतभेदों को कम करके स्थायी एकता लाने के सद्प्रयास किए। गाँधी जी ने लिखा है कि, ''पूर्ण स्वराज्य की मेरी कल्पना का अर्थ यह नहीं है कि हमारा देश सबसे अलग रह कर स्वतंत्रता का उपभोग करे, बल्कि विश्व के राष्ट्र मण्डल में उसका एक–दूसरे से स्वस्थ एवं सम्मानपूर्ण सहयोग रहे। हमारी स्वतंत्रता किसी दूसरे राष्ट्र के लिए कोई खतरा नहीं बनेगी। जिस प्रकार हम अपना शोषण नहीं होने देंगे, ठीक उसी प्रकार हम किसी दूसरे का शोषण भी नहीं करेंगे। अतः हम अपने स्वराज्य के द्वारा सम्पूर्ण विश्व की सेवा करेंगे।'' गाँधीजी ने विभिन्न संस्कृतियों के समन्वय को विश्व–बंधुत्व के विकास में महत्त्वपूर्ण कदम माना।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के कर्णधारों ने भी विश्व–कल्याण का संदेश दिया। 'दिनकर' ने उनके संदेशों में निहित विश्व–कल्याण के भावों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, ''गाँधी, रवीन्द्रनाथ, राधाकृष्णन और जवाहरलाल में हम इस आशा को गतिशील पाते हैं कि भारत के पास जो सन्देश है, भारत के पास जो दीर्घकालिक अनुभव है, उससे सारे विश्व का कल्याण हो सकता है।''

आज सम्पूर्ण विश्व आपसी संघर्ष की त्रासदी से गुजर रहा है। इस्लामिक स्टेट, तालिबान, हिजबुल मुजाहिदीन जैसे आतंकी संगठनों व उत्तरी कोरिया के क्रियाकलापों ने तो मानवता को कलंकित करके शर्मसार कर दिया है। सीरिया में गृहयुद्ध, लीबिया, ट्यूनीशिया में मानवाधिकारों के हनन, आतंकवाद का प्रसार, साम्प्रदायिक–विद्वेष, नवउपनिवेशवाद के प्रसार, साम्राज्यवाद, शस्त्रीकरण की बढ़ती होड़, ग्लोबल वार्मिंग, जैव विविधता पर मंडराते खतरे इत्यादि गंभीर वैश्विक समस्याओं से सभी आक्रान्त है। यदि भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व विश्व–बंधुत्व व भाईचारे को समझकर जीवन में प्रयोग कर लिया जाए तो उपर्युक्त समस्याओं का समय रहते उचित निराकरण किया जा सकता है।

विश्व में देशों के मध्य आज जो परस्पर मतभेद, विवाद और मनोमालिन्य है, उसका सबसे बड़ा कारण विस्तारवादी नीति और सह–अस्तित्व की भावना का अभाव है। जैन दर्शन का स्याद्वाद इसके समाधान में काफी प्रासंगिक है। 'स्याद्अस्ति, स्याद् नास्ति' अर्थात् वस्तु को एक दृष्टि से न देखकर उसको विभिन्न दृष्टियों से देखना ताकि विवाद न हो। इसे अपनाकर भाषायी, क्षेत्रीयता, सामाजिक, आर्थिक इत्यादि विवादों को सुलझाया जा सकता है।

निष्कर्ष –

आज सम्पूर्ण विश्व को भारतीय संस्कृति के विश्व–बंधुत्व भाव को आत्मसात् करने की आवश्यकता है, क्योंकि यहाँ भाषायी, रीति–रिवाजों, भौगोलिक विभिन्नता, नस्लीय–भेद होते हुए भी विविधता में एकता का आदर्श दिखाई पड़ता है। विविधता में एकता, प्राणिमात्र के कल्याण का भाव ही विश्व–बंधुत्व के मार्ग को प्रशस्त करेगा।

***सहायक आचार्य**
हिन्दी विभाग
राजकीय कन्या महाविद्यालय
अजमेर (राजस्थान)

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

1. भारत की राष्ट्रीय संस्कृति – एस. आबिद हुसैन, पृ. 3
2. भारतीय संस्कृति – डॉ. प्रीतिप्रभा गोयल, पृ. 14
3. यजुर्वेद 9.40
4. यजुर्वेद 36.18
5. उपविरत् 32.8
6. भारतीय संस्कृति – डॉ. प्रीतिप्रभा गोयल, पृ. 15
7. यजुर्वेद 40.6
8. प्राचीन संस्कृत साहित्य में पर्यावरण तथा परिस्थैतिकी–एक परिचय, डॉ. उमेशप्रसाद रस्तोगी, पृ. 71
9. भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व – डॉ. श्रीकृष्ण ओझा, पृ. 270
10. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ. 4
11. संस्कृति के चार अध्याय – रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ. 512
12. उपरिवत्, पृ. 537
13. उपरिवत्, पृ. 537